गोरा

अध्याय 16

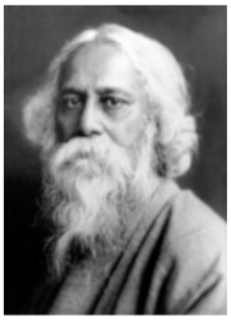

हिन्दी ADDA

रविंद्रनाथ टैगोर

गोरा

अध्याय 16

https://www.hindiadda.com/gora-part-xvi/

विनय यह समझ गया था कि ललिता के साथ उसके विवाह की बातचीत करने के लिए ही सुचरिता ने उसे बुलाया है। उसने यह प्रस्ताव अपनी ओर से समाप्त कर दिया है, इतने से ही तो मामला समाप्त नहीं हो जाएगा। जब तक वह जिंदा रहेगा तब तक किसी पक्ष को छुटकारा नहीं मिलेगा। अब तक विनय की सबसे बड़ी चिंता यही थी कि 'गोरा को कैसे चोट पहुँचाऊँ' गोरा से मतलब केवल गोरा नाम का व्यक्ति ही नहीं था, जिस भाव विश्वास,जीवन का संबल गोरा ने लिया है वह सब भी था। बराबर इनके साथ मिलकर निबाहते चलना ही विनय का अभ्यास था और इसी में उसको आनंद भी था, गोरा से किसी तरह का विरोध जैसे अपने ही से विरोध था।

लेकिन उस आघात का पहला संकोच तो दूर हो जाने से विनय को बल मिला था। फोड़ा काटने से पहले रोगी के भय और घबराहट की कोई सीमा नहीं होती, लेकिन चीरा लगने पर रोगी देखता है कि दर्द तो है पर आराम भी है और मामला कल्पना में जितना भयंकर जान पड़ता था वास्तव में उतना नहीं है।

अब तक अपने मन के साथ भी विनय तर्क नहीं कर पा रहा था, लेकिन अब उसके तर्क का द्वार खुल गया। अब मन-ही-मन गोरा के साथ उसका उत्तर-प्रत्युत्तर चलने लगा। जो-जो युक्तियाँ गोरा की ओर से दी जा सकती थीं उन्हें वह मन-ही-मन उठाकर कई ओर से उनका खंडन करने लगा। गोरा के साथ अगर आमने-सामने ही बहस हो सकती तो जहाँ उत्तेजना होती वहाँ साथ-ही-साथ शांति भी हो जाती, लेकिन विनय ने देखा कि इस मामले में गोरा अंत तक तर्क नहीं करेगा। इससे भी विनय के मन में एक खीझ उत्पन्न हुई। वह सोचने लगा-गोरा न समझेगा, न समझाएगा,केलव ज़बरदस्ती करेगा, ज़बरदस्ती! ज़बरदस्ती के आगे कैसे सिर झुका सकता हूँ? उसने कहा-जो भी हो, मेरा पक्ष सत्य का है। यह कहता हुआ वह सत्य नामक शब्द को मानो हृदय में जकड़ लेना चाहने लगा। गोरा के विरुध्द एक बहुत प्रबल पक्ष खड़ा करने की ज़रूरत होगी, इसलिए बार-बार विनय अपने मन को समझाने लगा कि सत्य ही उसका सबसे बड़ा संबल हैं यहाँ तक कि उसके मन में इस बात से अपने ही प्रति बड़ी श्रध्दा उत्पन्न हुई कि उसने सत्य को ही अपना आश्रय मान लिया है। इसीलिए तीसरे पहर जब सुचरिता के घर की ओर चला तक उसका सिर काफी ऊँचा उठा हुआ था। इस आत्मविश्वास का कारण उसका सत्य की ओर झुकाव है या और किसी चीज़ की ओर, यह सोचने-समझने की अवस्था उस समय विनय की नहीं थी।

हरिमोहिनी उस समय रसोई में व्यस्त थीं। विनय रसोई के द्वार पर खड़े होकर एक ब्राह्मण-कुमार के मधयाह्न-भोजन का दावा मंजूर कराकर ऊपर चला गया।

सुचरिता ने कुछ सिलाई लिए बैठे-बैठे उसी की ओर ऑखें झुकाए सुई चलाते-चलाते बात शुरु की; बोली, "देखिए विनय बाबू, जहाँ मन की कोई बाधा नहीं है वहाँ बाहर के विरोध को क्या मानकर चलना होगा?"

जब गोरा से बहस हुई थी तब विनय ने उसके खिलाफ युक्तियाँ दी थीं, अब जब सुचरिता से बहस होने लगी तब उसने उलटे पक्ष की युक्तियाँ देना शुरु किया। उस समय कोई यह नहीं सोच सकता था कि गोरा से उसका कोई मतभेद है।

विनय ने कहा, "दीदी, बाहर की बाधा को तुम लोग भी तो कुछ छोड़कर नहीं देखते।"

सुचरिता ने कहा, "उसका कारण है, विनय बाबू! हम लोगों की बाधा सिर्फ बाहरी बाधा नहीं है। हमारा समाज हमारे धर्म-विश्वास पर ही टिका है। लेकिन जिस समाज में आप हैं वहाँ आपका बंधन केवल सामाजिक बंधन है। इसलिए ललिता को अगर ब्रह्म-छोड़ जाना पड़े तो उसमें उसकी बहुत बड़ी हानि होगी, आपके समाज छोड़ने से आपका उतना नुकसान नहीं होगा।"

इस बात को लेकर विनय बहस करने लगा कि धर्म मनुष्य की व्यक्तिगत साधना की चीज़ है, उसे किसी समाज के साथ बाँधना ठीक नहीं है।

ठीक इसी समय एक चिट्ठी और एक अंग्रेजी अखबार लेकर सतीश कमरे में आया। विनय को देखकर वह अत्यंत उत्तेजित हो उठा, शुक्रवार को ही किसी प्रकार रविवार बना देने के लिए उसका मन उतावला हो गया। देखते-ही-देखते विनय और सतीश की सभा जुट गई और उधर सुचरिता ललिता की चिट्ठी और उसके साथ भेजा गया अखबार पढ़ने लग गई।

इस ब्रह्म अखबार में एक खबर थी कि किसी प्रसिध्द ब्रह्म-परिवार और हिंदू-समाज के बीच विवाह-संबंध होने की जो आशंका हो रही थी, हिंदू युवक की असम्मति के कारण वह टल गई है इस बात को लेकर उस हिंदू युवक की निष्ठा की तुलना में उस ब्रह्म-परिवार की शोचनीय दुर्बलता पर टीका-टिप्पणी की गई थी।

मन-ही-मन सुचरिता ने कहा-जैसे भी हो ललिता के साथ विनय का विवाह होना ही चाहिए। लेकिन वह इस युवक से तर्क करके तो करके तो होगा नहीं। सुचरिता ने

ललिता को वहाँ आने के लिए लिख दिया, पर उसमें यह नहीं लिखा कि विनय भी वहीं है।

किसी भी पत्र में किसी भी ग्रह-नक्षत्र के योग से शुक्रवार को रविवार पढ़ने की व्यवस्था न होने के कारण सतीश को स्कूल की तैयारी के लिए उठना ही पड़ा। स्नान के लिए थोड़ी देर का अवकाश चाहकर सुचरिता भी चली गई।

तर्क की उत्तेजना मिट जाने पर सुचरिता के कमरे में अकेले बैठे-बैठे विनय के भीतर का युवा पुरुष जाग उठा। तब नौ-साढ़े नौ का समय था। गली में लोगों का शोर नहीं था। सुचरिता के लिखने की मेज पर छोटी घड़ी टिक-टिक करती चल रही थी। कमरे का एक खिंचाव धीरे-धीरे विनय को अपने में घेरने लगा। कमरे का चारों ओर का छोटा-मोटा साज-सामान जैसे विनय के साथ बातचीत करने लगा। मेज पर सजी हुई चीजें, कढ़े हुए कुर्सीपोश, कुर्सियों के नीचे पैरों की जगह बिछी हुई किताबों से सजी हुई छोटी शैल्फ- सभी विनय के मन के भीतर जैसे एक गंभीर स्वर-स्पंदन उठाने लगीं। मानो कमरे में एक सुंदर रहस्य भरा था। इसी कमरे में निर्जन दोपहरी में सखी-सखी के बीच जिन बातों की चर्चा होती रही होगी उनकी सलज्ज सुंदर सत्ता मानो अब भी जहाँ-जहाँ छिपी हुई है। बातचीत के समय कौन कहाँ बैठा होगा, कैसे बैठा होगा, यह कल्पना के सहारे विनय देखने लगा। उस दिन परेशबाबू से उसने जो सुना था, 'मैंने सुचरिता से सुना है कि ललिता का मन तुम्हारी ओर से विमुख नहीं है', वही बात अनेक रूपों में अनेक तरह की छवि-सी उसके सामने घूम गई। एक अनिर्वचनीय आवेग विनय के मन में एक अत्यंत करुणा उदास रागिनी-सा बजने लगा। जो सब चीजें एसे एकाकी गंभीर रूप से एक भाषाहीन आभास-सी मन की गहराई में झलक जाती हैं, उन्हें प्रत्यक्ष कर देने की शक्ति न होने से अर्थात् कवि या चित्रकार न होने के कारण, विनय का मन चंचल हो उठा। उसे ऐसा लगने लगा कि कुछ-न-कुछ करना चाहिए, पर कुछ करने का कोई मार्ग भी नहीं है। यह जो एक परदा उसके सामने झूल रहा है, जो उसके बिल्कुल पास की चीज़ को इतनी दूर किए हुए हैं, काश उसे इसी क्षण उठ खड़े होकर फाड़ फेंकने की शक्ति उसमें होती!

कमरे में आकर विनय से हरिमोहिनी ने पूछा कि वह कुछ जलपान तो नहीं करना चाहता। विनय ने कहा, "नहीं।"

तब हरिमोहिनी वहीं बैठ गईं।

जब तक हरिमोहिनी परेश बाबू के घर में थीं तब तक विनय के प्रति उनका बहुत आकर्षण था। किंतु जब से उन्होंने सुचरिता को लेकर अलग गृहस्थी जमाई थी तब से इन लोगों का आना-जाना उनके लिए अत्यंत अरुचिकर हो गया था। आजकल आचार-विचार के मामले में सुचरिता जो पूरी तरह उनके कहने पर नहीं चलती इसका कारण इन सब लोगों से मिलना-जुलना ही है, यही उन्होंने अनिश्चित किया था। यद्यपि वह जानती थीं कि विनय ब्रह्म नहीं है, फिर भी इतना वह स्पष्ट अनुभव करती थी कि विनय के मन में हिंदू संस्कारों की कोई दृढ़ता नहीं है। इसीलिए अब वह पहले की भाँति उत्साह के साथ इस ब्राह्मण कुमार को बुला ले जाकर उस पर देवता के प्रसाद का अपव्यय नहीं करती थीं।

हरिमोहिनी ने आज बातचीत के सिलसिले में विनय से पूछा, "अच्छा बेटा, तुम तो ब्राह्मण के लड़के हो, लेकिन संध्या-अर्चना तो कुछ नहीं करते?"

विनय ने कहा, "मौसी, दिन-रात पढ़ाई रटते-रटते गायत्री-संध्या सब भूल गया हूँ।"

हरिमोहिनी ने कहा, "परेशबाबू भी तो पढ़े-लिखे हैं। लेकिन वह तो अपना धर्म मानकर शाम-सबेरे कुछ-न-कुछ करते हैं।"

विनय ने कहा, "मौसी, वह जो करते हैं वह सिर्फ मंत्र कंठस्थ करके नहीं किया जाता। उन जैसा कभी हो सकता तो मैं भी उन्हीं की तरह चलूँगा।"

कुछ रुखाई से हरिमोहिनी ने कहा, "तो उतने दिन बाप-दादों की तरह ही चलो न? यह क्या ठीक है कि न इधर न उधर? मनुष्य का कुछ तो धर्म होता ही है। न राम, न गंगा-मैया री, यह कैसे हो सकता है!"

इसी समय ललिता कमरे में आकर विनय को देखकर चौंक उठी। उसने हरिमोहिनी से पूछा, "दीदी कहाँ हैं?"

हरिमोहिनी ने कहा, "राधारानी नहाने गई हैं।"

मानो अनावश्यक रूप से सफाई देते हुए ललिता ने कहा, "दीदी ने मुझे बुला भेजा था।"

हरिमोहिनी ने कहा, "तो ज़रा बैठो न, अभी आ जाएगी।"

हरिमोहिनी का मन ललिता के प्रति भी कुछ अनुकूल न था। हरिमोहिनी सुचरिता को अब उसके पुराने परिवेश से छुड़ाकर पूरी तरह अपने वश में करना चाहती थीं। परेशबाबू की दूसरी लड़कियाँ यहाँ इतनी बार नहीं आतीं, अकेली ललिता ही जब-तब आकर सुचरिता के साथ बातें करती रहती है, यह हरिमोहिनी को अच्छा नहीं लगता। अक्सर वह दोनों की बातों में बाधा देकर सुचरिता को किसी-न-किसी काम के लिए बुला लेने की चेष्टा करती हैं या फिर इस बात की शिकायत करती हैं कि सुचरिता का लिखना-पढ़ना अब पहले की तरह बिना व्यवधान के नहीं चलता। लेकिन जब सुचरिता पढ़ने-लिखने में मन लगाती है तब हरिमोहिनी यह कहने से भी नहीं चूकतीं कि अधिक पढ़ना-लिखना लड़कियों के लिए अनावश्यक और अनिष्टकर होता हैं असल बात यह है कि जैसे भी हो वह सुचरिता को बिल्कुल अपने में घेर लेना चाहती हैं और किसी तरह वह न कर पाने से कभी सुचरिता के संगियों पर और कभी उसकी शिक्षा पर उसका दोष मढ़ती रहती हैं।

ललिता और विनय के साथ बैठे रहना हरिमोहिनी के लिए सुखकर हो, यह बात नहीं थी। अपितु उन दोनों पर गुस्सा करके ही वह बैठी रहीं। उन्होंने समझ लिया था कि विनय और ललिता के बीच एक रहस्यमय संबंध था। तभी उन्होंने मन-ही-मन कहा-तुम लोगों के समाज में चाहे जैसी रीति हो, मेरे इस घर में यह सब निर्लज्ज मिलना-जुलना, यह सब ख्रिस्तानी चलन नहीं चलेगा।

इधर ललिता के मन में भी एक विरोध का भाव उठ रहा था। कल जब सुचरिता आनंदमई के घर गई थी तब ललिता ने भी साथ चलने का निश्चय किया था, लेकिन किसी तरह न जा सकी। उसमें गोरा के प्रति श्रध्दा बहुत थी, लेकिन विरोध का भाव भी उतना ही प्रबल था। यह बात किसी तरह वह अपने मन से नहीं हटा पाती थी कि गोरा सभी तरह उसके प्रतिकूल हैं। यहाँ तक कि जिस दिन गोरा जेल से छूटा उस दिन से विनय के प्रति भी ललिता के मनोभाव में थोड़ा परिवर्तन आ गया। कुछ दिन पहले तक वह इस बात पर गर्व करती रही थी कि विनय पर उसका बड़ा गहरा प्रभाव है। लेकिन विनय गोरा के प्रभाव से किसी तरह भी मुक्त नहीं हो सकता, इस कल्पना से ही विनय के विरुध्द भी कमर कसकर वह तैयार हो रही थी।

ललिता के कमरे में आते देखकर विनय के मन में बड़ी हलचल मच गई। विनय कभी भी ललिता के बारे में सहज भाव नहीं रख सका था। जब से उन दोनों के विवाह की संभावना की अफवाहें समाज में फैल गई थीं तब से ललिता को देखते ही विनय के

मन की हालत तूफान के समय इधर-उधर घूमने वाली कंपास की सुई-सी हो जाती थी।

विनय को कमरे में बैठा देखकर ललिता को सुचरिता पर गुस्सा हो आया। वह समझ गई कि सुचरिता अनिच्छुक विनय के मन को अनुकुल बनाने के लिए ही प्रयत्न कर रही है, और ललिता की पुकार आज इसीलिए हुई कि टेढ़े को सीधा करने की कोशिश करे।

उसने हरिमोहिनी की ओर देखकर कहा, "दीदी से कह दीजिएगा मैं अभी नहीं रुक सकती। फिर किसी वक्त आ जाऊँगी।"

यह कहकर विनय की ओर नज़र उठाए बिना तेज़ी से वह चली गई। तब हरिमोहिनी भी विनय के पास और बैठे रहना अनावश्यक समझकर घर के कामकाज के लिए उठ खड़ी हुईं।

ललिता यह सुलगती आग जैसा चेहरा विनय के लिए अपरिचित न था। पर इधर कई दिनों से वैसा चेहरा देखने का अवसर नहीं मिला था। एक समय ऐसा भी था जब ललिता विनय के मामले में हमेशा अपने अग्नि-बाण साधे रहती थी। वे बुरे दिन बिल्कुल बीत गए हैं, यह सोचकर विनय निश्चिंत हो चला था। आज उसने देखा कि वे ही पुराने बाण फिर अस्त्रशाला से निकाले गए हैं- उन पर जंग का ज़रा-सा भी दाग नहीं पड़ा है। गुस्सा सह लिया जा सकता है, लेकिन घृणा सहना विनय जैसे व्यक्ति के लिए बड़ा मुश्किल होता है। एक दिन ललिता ने उसे गोरा नाम के ग्रह का उपग्रह मात्र मानकर उसके प्रति कैसी तीव्र अवज्ञा दिखाई थी, वह विनय को याद हो आया। आज भी उसकी दुविधा के कारण ललिता उसे बिल्कुल कायर समझ रही होगी, इस कल्पना से वह भयाकुल हो उठा। ललिता उसकी कर्तव्य-बुध्दि से उत्पन्न संकोच को उसका डरपोकन समझेगी, फिर भी इस बारे में अपनी ओर से दो बातें कहने का भी मौका उसे न मिलेगा, यह विनय को असह्य जान पड़ा। तर्क करने के अधिकार से वंचित कर दिया जाना विनय के लिए बहुत बड़ी सज़ा थी। क्योंकि वह जानता था कि तर्क वह बहुत अच्छा कर सकता है। सुलझाकर अपनी बात कहने और किसी एक पक्ष का समर्थन करने की उसमें असाधारण क्षमता है। लेकिन जब भी ललिता ने उससे लड़ाई की है, उसे दलीलें देने का मौका कभी नहीं दिया, आज भी उसे इसका मौका न मिलेगा।

वह अखबर अभी वहीं पड़ा हुआ था। अपनी बेचैनी की हालत में विनय ने उसे अपनी ओर खींचकर देखा कि उसमें एक जगह पेंसिल का निशान लगा हुआ था। उसने वह अंश पढ़ा और समझ लिया कि उस सारी चर्चा और नीति-उपदेश के लक्ष्य वही दोनों हैं। ललिता प्रतिदिन अपने समाज के लोगों से कितना अपमान पा रही है, यह वह स्पष्ट समझ सका। इस अपमान से उसकी रक्षा करने के लिए विनय कोई प्रयास नहीं कर रहा है और केवल समाज-तत्व को लेकर तर्क की बारीकियाँ ढूँढ़ने में व्यस्त है- ललिता जैसी तेजस्विनी नारी का इस कारण उसे उपेक्षा का पात्र समझना उसे उचित ही जान पड़ा। समाज की संपूर्ण उपेक्षा करने का ललिता ने कितना साहस है, यह याद करके और उस अभिमानिनी के साथ अपनी तुलना करके उसे शर्म आने लगी।

स्नान करके और सतीश को भोजन खिलाकर स्कूल भेजकर सुचरिता जब विनय के पास आई तब वह उदास बैठा हुआ था। सुचरिता ने पहली बात फिर नहीं उठाई। विनय बिना मुँह-हाथ धोए और कुल्ला किए ही भोजन करने बैठ गया।

हरिमोहिनी ने कहा, "अच्छा बेटा, तुम तो हिंदुओं का कोई नियम ही नहीं मानते हो- तब फिर तुम्हारे ब्रह्म हो जाने में ही क्या बुराई थी?"

मन-ही-मन विनय ने कुछ आहत होकर कहा, "जिस दिन समझ लूँ कि हिंदूपन का मतलब सिर्फ खान-पान और छुआछूत के निरर्थक नियम ही हैं, उस दिन चाहे ब्रह्म, चाहे ख्रिस्तान, चाहे मुसलमान कुछ भी हो जाऊँगा। लेकिन अभी हिंदुत्व पर इतनी अश्रध्दा नहीं हुई है।"

जब विनय सुचरिता के घर से चला तब उसका मन बहुत ही अशांत था। मानो चारों ओर से धक्के खाता हुआ वह एक निराश्रय शून्य में आ गिरा था। इधर गोरा के निकट अपना पुराना स्थान पाना उसके लिए कठिन हो गया था, उधर ललिता भी उसे दूर धकेल दे रही थी- यहाँ तक कि हरिमोहिनी के साथ उसका अपनेपन का संबंध भी इतने कम समय में ही विच्छिन्न होने लगा था। वरदासुंदरी एक समय उससे आंतरिक स्नेह करती थीं, परेशबाबू अब भी उससे स्नेह करते हैं, लेकिन स्नेह के बदले में उनके घर में उसने ऐसी अशांति ला दी है कि अब वहाँ भी उसके लिए जगह नहीं रही। जिनसे उसे प्रेम है उनकी श्रध्दा और प्यार के लिए विनय हमेशा लालायित रहता है, उसे कई प्रकार से अपनी ओर खींचने की शक्ति भी उसमें बहुत है। वही विनय आज अचानक अपनी चिर अभ्यस्त प्रीति की लीक से कैसे हट गया, यही बात वह मन-ही-मन सोचने लगा। सुचरिता के घर से बाहर निकलकर अब वह

कहाँ जाए, यही वह सोच नहीं पा रहा है। एक समय था जब वह बिना कुछ सोचे सहज ही गोरा के घर की ओर चल पड़ता था, लेकिन वहाँ जाना आज उसके लिए पहले जैसा सहज-स्वाभाविक नहीं रहा। यदि जाएगा भी तो गोरा के सामने उपस्थित होकर उसे चुप ही रहना होगा- वह नीरवता उससे नहीं सही नहीं जाएगी। इधर परेशबाबू के घर का द्वार भी उसके लिए खुला नहीं है।

यह मैं कैसे और क्यों अस्वाभाविक स्थिति में आ पड़ा? सिर झुकाए यह सोचता हुआ धीरे-धीरे विनय चलता रहा। हेदुआ तालाब के पास आकर वह एक पेड़ के नीचे बैठ गया। अब तक उसके जीवन में जो भी छोटी-बड़ी समस्या आ खड़ी हुई है उसने अपने बंधु के साथ उसकी चर्चा करके उसका कुछ-न-कुछ समाधन कर लिया है, पर आज वह मार्ग खुला नहीं है, आज उसे अकेले ही सोचना होगा।

विनय में आत्म-विश्लेषण की शक्ति की कमी नहीं है। सारा दोष बाहर की घटनाओं पर मढ़कर खुद छुट्ठी पा लेना उसके लिए सहज नहीं है। अकेले बैठकर उसने अपने को ही उत्तरदाई ठहराया। मन-ही-मन उसने कहा-माल भी रखूँगा और उसका दाम भी न दूँगा, ऐसी चतुराई दुनिया में नहीं चल सकती। कोई एक चीज़ चुन लेना चाहते ही किसी दूसरी का त्याग करना ही होता है। जो व्यक्ति मन कड़ा करके किसी एक को छोड़ नहीं पाता है उसकी मेरे जैसी गति होती है- वह सभी कुछ खो देता है। दुनिया में जो लोग अपने जीवन का रास्ता सख्त होकर चुन सकते हैं, वे ही निश्चिंत हो पाते हैं। जो अभागे यह मार्ग भी पकड़ना चाहते हैं और वह मार्ग भी छोड़ना नहीं चाहते, जो अपने को किसी से भी वंचित नहीं कर सकते वे अपनी मंज़िल से भी भटक जाते हैं- केवल राह के कुत्ते की तरह मारे-मारे फिरते हैं।

रोग का निदान करना कठिन है, लेकिन निदान हो जाने से ही उसका इलाज सहज हो जाता हो, यह बात भी नहीं है। विनय की समझने की शक्ति बड़ी तीव्र थी, कुछ करने की शक्ति का ही उसमें अभाव था। इसीलिए वह अब तक अपने से अधिक प्रबल इच्छा शक्ति वाले अपने बंधु पर निर्भर करता आया था। अंत में अत्यंत मुसीबत में पड़कर ही आज उसने सहसा पहचाना कि अपनी इच्छाशक्ति न रहने पर भी छोटे-मोटे काम तो किसी तरह उधार पर चला लिए जा सकते हैं, लेकिन असली ज़रूरत के समय दूसरे का हवाला देकर काम नहीं चलाया जा सकता।

सूर्य के ओट में जाने से जहाँ अब तक छाया थी वहाँ धूप आ गई, तब वह पेड़ के नीचे से उठकर फिर सड़क पर आ गया। थोड़ी दूर जाते ही सहसा उसने पुकार सुनी,

"विनय बाबू, विनय बाबू!" और क्षण-भर बाद ही सतीश ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया। उस समय वह स्कूल से घर लौट रहा था।

सतीश ने कहा, "चलिए विनय बाबू, मेरे साथ घर चलिए।"

विनय ने कहा, "यह कैसे हो सकता है, सतीश बाबू?"

सतीश ने कहा, "क्यों नहीं हो सकता?"

विनय बोला, 'ऐसे बार-बार जाने से तुम्हारे घर के लोग मुझसे ऊब नहीं जाएँगे?"

सतीश ने विनय की इस दलील को जवाब देने लायक भी नहीं समझा। बोला, "नहीं, चलिए।"

विनय का उसके परिवार के लोगों के साथ जो संबंध है उसमें कितनी बड़ी क्रांति हो गई है, बालक सतीश यह सब कुछ नहीं जानता, वह तो केवल विनय से स्नेह करता है, विनय का हृदय यह बात सोचकर अत्यंत विचलित हो उठा। उसके लिए परेशबाबू के परिवार ने जिस स्वर्गलोक की सृष्टि की थी, उसमें केवल इस बालक के आनंद की ही संपूर्णता अक्षुण्ण है। इस प्रलय के दिन में भी उसके मन पर किसी संदेह के बादल की छाया नहीं पड़ी है, समाज के किसी वार ने उसमें कोई दरार नहीं डाली है। सतीश के गले में बाँह डालते हुए विनय ने कहा, "चलो भाई, तुम्हें तुम्हारे घर के दरवाजे तक तो पहुँचा आऊँ!"

सतीश को बाँह से घेरकर विनय जैसे सुचरिता और ललिता के उस स्नेह और दुलार के माधुर्य को स्पर्श कर रहा था जो सतीश के जीवन में शिशुकाल से ही वंचित होता रहा होगा।

सतीश सारे रास्ते जो बहुत सी-बे-सिर पैर की बातें करता रहा वे विनय के कानों को बहुत मीठी लगीं। उस बालक के मन की सरलता के संपर्क में वह अपने जीवन की जटिल समस्या को थोड़ी देर के लिए बिल्कुल भुला पाने में समर्थ हुआ।

परेशबाबू के घर के आगे से ही सुचरिता के घर का रास्ता था। रास्ते से ही परेशबाबू के घर की निचली मंजिल का बैठने का कमरा दीखता था। विनय उस कमरे के सामने आते ही बार-बार उधर देखे बिना न रह सका। उसने देखा मेज के सामने परेशबाबू बैठे हुए हैं; कुछ कह रहे हैं या नहीं,यह वह न समझ सका। ललिता की ओर

पीठ किए परेशबाबू की कुर्सी के पास बेंत के एक छोटे मूढ़े पर छात्र-सी चुपचाप बैठी हुई थी।

सुचरिता के घर से लोटने पर ललिता का हृदय जिस क्षोभ से असह्य रूप से व्याकुल हो उठा था, उसका निवारण करने का कोई उपाय वह न जानती थी, इसीलिए ललिता धीरे-धीरे आकर परेशबाबू के पास बैठ गई थी। परेशबाबू में एक ऐसी शांति झलकती थी कि बेचैन ललिता अपनी चंचलता का दमन करने के लिए बीच-बीच में उनके पास आकर चुपचाप बैठी रहती थी। परेशबाबू पूछ बैठते, "क्या है, ललिता?" तो ललिता उत्तर देती, "कुछ नहीं, बाबा! तुम्हारा यह कमरा बड़ा ठंडा जो है।"

ललिता उनके पास आज घायल हृदय लेकर आई है, यह परेशबाबू स्पष्ट समझ गए थे। स्वयं उनके भीतर भी एक वेदना टीस रही थी। इसीलिए उन्होंने धीरे-धीरे ऐसी बातें छेड़ दी थीं जिनसे व्यक्तिगत जीवन के छोटे सुख-दु:ख का भार हल्का हो जाए।

विनय बाप-बेटी की इस एकांत बातचीत का दृश्य देखकर क्षण-भर के लिए ठिठक गया। सतीश क्या कह रहा था, जैसे उसने यह सुना ही नहीं। उस समय सतीश ने उससे युध्द विद्या के बारे में एक बड़ा कठिन प्रश्न पूछा था। अगर बहुत-से बाघ पकड़कर बहुत दिनों तक उन्हें सिखाया जाय और फिर अपनी सेना की अग्रिम पंक्ति में रखकर युध्द किया जाय तो क्या विजय निश्चित न होगी, यही उसका प्रश्न था। उन दोनों का प्रश्नोत्तार अब तक बिना बाधा के होता रहा था, अब अचानक बाधा का अनुभव करके सतीश ने विनय के चेहरे की ओर देखा। फिर विनय की दृष्टि का अनुसरण करते हुए परेशबाबू के कमरे की ओर देखते ही चिल्ला उठा, "ललिता दीदी, यह देखो, मैं विनय बाबू को रास्ते से पकड़ लाया हूँ।"

विनय पसीना-पसीना हो उठा। कमरे में बैठी ललिता पल-भर में मूढ़े से उठ खड़ी हुई और परेशबाबू ने मुड़कर रास्ते की ओर देखा। विनय बड़े असमंजस में पड़ गया।

विनय ने सतीश को विदा देकर परेशबाबू के घर में प्रवेश किया। उनके कमरे में पहुँचकर उसने देखा, ललिता चली गई थी। उन सबको वह शांति भंग करने वाला उग्रवादी-सा लग रहा होगा, यह सोचकर वह सकुचाता हुआ कुर्सी पर बैठ गया।

विनय ने स्वास्थ्य आदि साधारण शिष्टाचार के बाद सहसा बात शुरू की, "मैं जब हिंदू-समाज के आचार-विचार में श्रध्दा नहीं रखता और रोज़-रोज उसे तोड़ता ही रहता हूँ, तब मैं समझता हूँ कि ब्रह्म-समाज में आश्रय लेना ही मेरे लिए उचित होगा। मेरी इच्छा है कि आप से ही दीक्षा लूँ।"

अभी पंद्रह मिनट पहले तक भी इस संकल्प और इस इच्छा ने विनय के मन में स्पष्ट आकार नहीं लिया था। परेशबाबू थोड़ी देर स्तब्ध रहकर बोले, "अच्छी तरह सब बातें सोचकर देख ली हैं?"

विनय ने कहा, "इसमें और तो कुछ सोचने को नहीं है, बस इतना ही सोचना है कि क्या उचित है और क्या अनुचित? और वह बहुत सीधी बात है। हमने जो शिक्षा पाई है उससे मैं किसी तरह ईमानदारी से आचार-विचार को ही परम धर्म के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता। इसीलिए मेरे व्यवहार में कदम-कदम पर विसंगति दीखती है, और जो हिंदू धर्म में पूरी श्रध्दा रखते हैं उनके साथ जुड़ा रहकर मैं उन्हें बारबर चोट ही पहुँचाता हूँ। यह मेरे लिए बिल्कुल अनुचित है, इसमें कोई संदेह नहीं है। ऐसी स्थिति में और कोई बात न सोचकर इस अन्याय को दूर करने के लिए ही मुझे प्रस्तुत होना चाहिए। नहीं तो मेरा आत्मसम्मान बना नहीं रह सकता।"

हालाँकि परेशबाबू को समझाने के लिए इतनी लंबी व्याख्या की ज़रूरत नहीं थी, ये सब बातें स्वयं अपने को बल देने के लिए थीं। वह न्याय और अन्याय के एक द्वंद्व में पड़ा हुआ है जिसमें सब छोड़कर न्याय का पक्ष लेकर उसे जई होना होगा, यह सोचकर उसकी छाती गर्व से फूल उठी। मनुष्यत्व की मर्यादा तो रखनी ही होगी।

परेशबाबू ने पूछा, "धर्म-विश्वास के बारे में ब्रह्म-समाज से तुम्हारा मतैक्य तो है न?"

थोड़ी देर चुप रहकर विनय बोला, "आपसे सच कहूँ, पहले मैं सोचता था कि मेरा कुछ-न-कुछ धर्म-विश्वास है। इसे लेकर कई लोगों से मेरा काफी झगड़ा भी होता रहा है, लेकिन आज मैं निश्चित जानता हूँ कि मेरे जीवन में अभी धर्म-विश्वास विकसित नहीं हुआ है। इतना भी समझ सका हूँ तो आपको देखकर। अपने जीवन में धर्म की मुझे सच्ची आवश्यकता नहीं हुई और उसमें सच्चा विश्वास नहीं उत्पन्न हुआ, इसीलिए कल्पना और युक्ति-कौशल से मैं अब तक अपने समाज में चल रहे धर्म की तरह-तरह की सूक्ष्म व्याख्या करके केवल अपनी तर्क करने की योग्यता बढ़ाता रहा हूँ। कौन धर्म सच्चा है, यह सोचने की मुझे कोई ज़रूरत नहीं पड़ी। जिस धर्म को सच्चा कहने से अपनी जीत हो जाए उसी को सच्चा बताकर साबित करने में मैं जुट गया हूँ। प्रमाण देना जितना ही कठिन हुआ है उतना ही प्रमाण दे पाने पर मैंने अहंकार किया है। मेरे मन में कभी धर्म-विश्वास संपूर्ण सत्य और स्वाभाविक हो सकेगा या नहीं, यह मैं आज भी नहीं कह सकता, लेकिन अनुकूल अवस्था में रहने पर और दृष्टांत सामने होने पर मैं इधर बढ़ सकता हूँ, यह निश्चित है। कम-से-कम

जो बातें भीतर-ही-भीतर मेरी बुध्दि को अखरती हैं, जीवन-भर उन्हीं का झंडा फहराते हुए घूमने की ग्लानि से तो मुक्ति पा सकूँगा।"

परेशबाबू से बात करते-करते विनय अपनी वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल युक्तियों को रूप देने लगा। वह ऐसे उत्साह से बातें करने लगा जैसे बहुत दिन के तर्क-वितर्क के बाद वह इस दृढ़ सिध्दांत पर पहुँच सका है।

फिर परेशबाबू ने उससे कुछ दिन और सोच लेने के लिए आग्रह किया। इससे विनय ने समझा कि परेशबाबू को उसकी दृढ़ता पर शंका है,जिससे उसका हठ और भी प्रबल हो उठा। बार-बार वह यह जताने लगा कि उसका मन एक असंदिग्ध बिंदु पर आ पहुँचा है जहाँ से उसके ज़रा भी हिलने-डुलने की कोई संभावना नहीं है। ललिता से विवाह की बात दोनों पक्षों में से किसी की ओर से नहीं उठी।

इसी समय वरदासुंदरी घर के किसी काम के बहाने वहाँ आईं और विनय मानो वहाँ हो ही नहीं, इस ढंग से अपना काम करके जाने लगीं। विनय ने सोचा था कि परेशबाबू अवश्य वरदासंदरी को बुलाकर विनय का नया समाचार उन्हें देंगे। लेकिन परेशबाबू ने कुछ नहीं कहा। वास्तव में उन्होंने यह सोचा ही नहीं कि अभी बताने का समय हुआ है। वह इस बात को अभी सबसे छिपाए ही रखना चाहते थे। लेकिन जब वरदासुंदरी विनय के प्रति स्पष्ट अवज्ञा और क्रोध प्रकट करके जाने लगीं तब विनय से और न रहा गया। उसने जाने को उद्यत वरदासुंदरी के पैरों से सिर झुकाकर कहा, "मैं ब्रह्म-समाज में दीक्षा लेने का प्रस्ताव लेकर आप लोगों के पास आया हूँ। मैं अयोग्य हूँ, लेकिन आप लोग मुझे योग्य बना लेंगे इसका मुझे विश्वास है।

वरदासुंदरी यह सुनकर विस्मय से ठिठक गईं और धीरे-धीरे मुड़कर कमरे में बैठ गईं। जिज्ञासु दृष्टि से उन्होने परेशबाबू के मुँह की ओर देखा।

परेशबाबू बोले, "विनय दीक्षा ग्रहण करने के लिए अनुरोध कर रहे हैं।"

वरदासुंदरी के मन में यह सुनकर विजय का गर्व तो उदित हुआ, लेकिन संपूर्ण आनंद नहीं हुआ। भीतर-ही-भीतर उनकी यह इच्छा थी कि अबकी बार परेशबाबू को एक अच्छा सबक मिल जाय। स्वामी को भी भारी अनुताप भोगना होगा, उन्होंने यह भविष्यवाणी बार-बार बहुत ज़ोर देकर की थी, इसीलिए यह देखकर कि सामाजिक आंदोलन से परेशबाबू कुछ विचलित नहीं हो रहे हैं, मन-ही-मन वह अधीर भी हो रही थीं। अब सारे संकट का सुचारु रूप से समाधान हो जाएगा, यह बात उनके लिए बहुत अधिक प्रीतिकर नहीं थी। गंभीर चेहरा बनाकर उन्होंने कहा, "दीक्षा का यह प्रस्ताव

यदि कुछ दिन पहले ही आ गया होता तो हमें इतना दु:ख और अपमान न सहना पड़ता।"

परेशबाबू ने कहा, "हमारे दु:ख, कष्ट और अपमान की तो कोई बात नहीं हो रही है, विनय दीक्षा लेना चाहते हैं।"

वरदासुंदरी बोल उठीं, "सिर्फ दीक्षा?"

विनय ने कहा, "अंतर्यामी जानते हैं कि आपका दु:ख-अपमान सब मेरा भी है।"

परेशबाबू ने कहा, "देखो विनय, तुम जो धर्म की दीक्षा लेना चाहते हो उसकी ज़िम्मेदारी दूसरों पर न डालो। मैं तुम्हें पहले भी कह चुका हूँ, हम लोग किसी सामाजिक संकट में पड़ रहे हैं, ऐसा सोचकर तुम कोई भारी ज़िम्मेदारी अपने सिर पर न लेना।"

वरदासुंदरी ने कहा, "सो तो ठीक है। किंतु मैं यह भी कहूँगी कि हम सबको जाल में फँसाकर चुप बैठे रहना भी उनका कर्तव्य नहीं है।"

परेशबाबू ने कहा, "चुप न बैठकर चंचल हो उठने से तो फंदे में और भी गाँठें पड़ सकती हैं। कुछ करने को ही कर्तव्य कहा जाय यह ज़रूरी नहीं है, कुछ न करना ही कई बार सबसे बड़ा कर्तव्य होता है।"

वरदासुंदरी ने कहा, "वह होगा। मैं तो निर्बुध्दि हूँ, अच्छी तरह सब बात नहीं समझ सकती। अब तय क्या हुआ, यह सुनकर चली जाना चाहती हूँ, मुझे बहुत काम है।"

विनय ने कहा, "परसों रविवार को मैं दीक्षा लूँगा। मेरी इच्छा है कि परेशबाबू.... "

एकाएक विनय का मन डूब गया। नियमानुसार ब्रह्म-समाज में आवेदन करने जैसी तो उसके मन की हालत नहीं थी- विशेषतया जिस ब्रह्म-समाज में ललिता की बात को लेकर उसकी इतनी चर्चा हो चुकी थी वह किस मुँह से किन शब्दों में चिट्ठी लिखेगा? जब वह चिट्ठी ब्रह्म-समाज पत्रिका में प्रकाशित होगी, तब कैसे वह सिर उठा सकेगा? वह चिट्ठी गोरा पढ़ेगा, आनंदमई पढ़ेंगी। उसके साथ और कोई इतिहास तो नहीं दिया जाएगा- उसमें केवल इतनी बात प्रकाशित की जाएगी कि विनय का मन अचानक ब्रह्म-धर्म में दीक्षा लेने के लिए बेचैन हो उठा है। सच बात उतनी ही तो नहीं है- उसे और बहुत कुछ के साथ मिलाकर न देखने से विनय के लिए तो कहीं कुछ छिपाने का स्थान न रहेगा।

वरदासुंदरी विनय को चुप रहते देखकर डरीं। बोलीं, "वह ब्रह्म-समाज में तो किसी को पहचानते नहीं, हमको ही सब बंदोबस्त कर देना होगा। मैं आज ही अभी पानू बाबू को बुला भेजती हूँ। अब तो समय भी अधिक नहीं है, परसों ही तो रविवार है।"

इसी समय दिखाई दिया कि सुधीर कमरे के सामने से ऊपर की मंज़िल की ओर जा रहा है। उसे पुकारकर वरदासुंदरी ने कहा, "सुधीर, विनय परसों ही हमारे समाज में दीक्षा लेंगे।"

सुधीर अत्यंत प्रफुल्लित हो उठा। मन-ही-मन वह विनय का बड़ा प्रशंसक था, विनय को ब्रह्म-समाज में ले लिया जा सकेगा, यह सुनकर वह बहुत उत्साहित हुआ। विनय जैसी बढ़िया अंग्रेजी लिख सकता था, उसकी जैसी विद्या-बुध्दि थी, उसे देखते उसका ब्रह्म-समाज में शामिल न होना ही सुधीर को विनय के लिए असंगत जान पड़ता था। विनय जैसा व्यक्ति किसी तरह ब्रह्म-समाज के बाहर रह ही नहीं सकता, इसका प्रमाण पाकर उसकी छाती फूल उठी। उसने कहा, "लेकिन परसों रविवार तक ही कैसे सब हो सकेगा? बहुतों तो खबर ही नहीं पहुँच सकेगी।"

सुधीर चाहता था कि विनय की इस दीक्षा को एक उदाहरण के रूप में सर्वसाधारण के सम्मुख घोषित किया जाय।

वरदासुंदरी ने कहा, "नहीं, नहीं, रविवार तक सब हो जाएगा। सुधीरर, तुम दौड़कर जाओ, पानू बाबू को तुरंत बुला लाओ।"

सुधीर जिस अभागे के उदाहरण द्वारा ब्रह्म-समाज की अजेय शक्ति का सर्वत्र प्रचार करने की कल्पना से उत्तेजित हो रहा था, वह मन-ही-मन अपने को बहुत हीन अनुभव कर रहा था। जो चीज़ मन-ही-मन तर्क करते समय बिल्कुल मामूली दीखती थी, बाहर उसका चेहरा देखकर विनय व्याकुल हो उठा।

पानू बाबू के बुलाए जाने पर विनय उठ खड़ा हुआ। वरदासुंदरी ने कहा, "जरा बैठो, पानू बाबू अभी आ जाएँगे, देर नहीं लगेगी।"

विनय ने कहा, "नहीं-मुझे तो माफ कीजिए।"

किसी तरह वह इस वातावरण से निकलकर खुले में सारी बात शांति पूर्वक सोचने का अवसर पा लेना चाहता था।

विनय के उठते ही परेशबाबू भी उठ खड़े हुए और उसके कंधे पर हाथ रखते हुए बोले, "विनय, जल्दबाज़ी में कुछ मत करो- शांति से स्थिर होकर सारी बात सोचकर देख लो। अपने मन को ठीक-ठीक समझे बिना जीवन के इतने बड़े मामले में कदम मत बढ़ाओ।"

मन-ही-मन वरदासुंदरी ने पति के प्रति अत्यंत असंतुष्ट होकर कहा, "शुरू में तो कोई सोच-समझकर काम करता नहीं, बवाल खड़ा कर देता है,फिर जब जान पर आती है तब कहता है, 'बैठकर सोचो।' तुम लोग आराम से बैठकर सोच सकते हो, लेकिन हमारी तो जान निकल रही है।"

विनय के साथ सुधीर भी सड़क पर आ गया। ढंग से बैठकर खाने से पहले थोड़ा चखकर देखने की जैसी इच्छा होती है, कुछ उसी ढंग की उतावली सुधीर को हो रही थी। वह चाहता था, उसी समय विनय को अपने दोस्तों में ले जाकर उन्हें यह शुभ-संवाद सुनाकर खुशियाँ मनाना शुरू कर दे। लेकिन सुधीर के इस उच्छ्वसित उल्लास देखकर विनय का मन और भी संकुचित होता जा रहा था। जब सुधीर ने प्रस्ताव किया, "विनय बाबू,चलिए न हम दोनों साथ-साथ पानू बाबू के पास चलें", तब उसकी बात अनसुनी करके झटककर अपना हाथ छुड़ाकर विनय चला गया।

थोड़ी दूर जाने पर विनय ने देखा, अविनाश अपने गुट के दो-एक लोगों को साथ लिए बड़ी तेज़ी से लपकता हुआ कहीं जा रहा हैं विनय को देखते ही अविनाश बोला, "अरे, यह रहे विनय बाबू! बहुत अच्छा हुआ- चलिए हमारे साथ!"

विनय ने पूछा, "कहाँ जा रहे हो?"

अविनाश ने कहा, "काशीपुर का बगीचा ठीक करने जा रहे हैं, वहीं गौरमोहन बाबू के प्रायश्चित की सभा होगी।"

विनय ने कहा, "नहीं, मुझे अभी जाने की फुर्सत नहीं है।"

अविनाश ने कहा, "यह कैसी बात कहते हैं? यह कितनी बड़ी बात है, आप क्या समझ सकते हैं? नहीं तो गौरमोहन बाबू क्या ऐसा अनावश्यक प्रस्ताव करते। आजकल के ज़माने में हिंदू-समाज को अपनी ताकत दिखानी होगी। गोरमोहन बाबू के प्रायश्चित से देश के लोगों के मन में क्या कोई मामूली हलचल मचेगी? हम लोग देश-विदेश के ब्राह्मण-पंडित सभी को निमंत्रित करेंगे। इससे सारे हिंदू-समाज पर

बड़ा गहरा असर पड़ेगा। लोग समझ सकेंगे कि हम अभी ज़िंदा हैं। समझ सकेंगे कि हिंदू-समाज मरने वाला नहीं है।"

किसी तरह अविनाश से छुटकारा पाकर विनय आगे बढ़ गया।

हरानबाबू को बुलाकर जब वरदासुंदरी ने उनसे सारी बात कही तब थोड़ी देर वह गंभीर होकर बैठे रहे और फिर बोले, "इस बारे में एक बार ललिता के साथ बातचीत कर लेना भी हमारा कर्तव्य है।"

हरानबाबू ने ललिता के आने पर अपनी गंभीरता की मात्रा को अंतिम स्वर तक चढ़ाकर कहा, "देखो ललिता, तुम्हारे जीवन में एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी का समय आ पहुँचा है। एक तरफ तुम्हारा धर्म है, दूसरी तरफ तुम्हारी प्रवृत्ति। दानो में से तुम्हें एक मार्ग चुन लेना होगा।"

इतना कहने के बाद कुछ रुक कर हरानबाबू ने ललिता के चेहरे पर आँखें गड़ा दीं। हरानबाबू का खयाल था कि उनकी इस न्यायाग्नि से दीप्त दृष्टि के सामने भीरुता काँप जाएगी, कपट राख हो जाएगा-उनकी यह तेजस्वी आध्यात्मिक दृष्टि ब्रह्म-समाज की मूल्यवान संपत्ति है।

ललिता ने कहा, "तुमने सुना ही होगा, तुम्हारी अवस्था की ओर ध्यान देकर या जिस कारण से हो विनय बाबू आखिर हमारे समाज में दीक्षा लेने को राज़ी हो गए हैं।"

यह बात ललिता ने पहले नहीं सुनी थी। सुनकर उनके मन पर क्या असर हुआ, यह उसने प्रकट नहीं होने दिया। उसकी आँखें चमक उठीं पर वह पत्थर की मूर्ति-सी स्थिर बैठी रही।

हरानबाबू कहते ही गए, "परेशबाबू निश्चय ही विनय की इस मजबूरी से बहुत प्रसन्न हुए हैं। लेकिन वास्तव में इसमें प्रन्न होने की कोई बात है या नहीं, इसका निश्चय तो तुम्हीं को करना होगा। इसीलिए मैं आज ब्रह्म-समाज के नाम पर तुमसे अनुरोध करता हूँ, अपनी उन्मत्त प्रवृत्ति को एक तरफ हटाकर ओर केवल धर्म की ओर नज़र रखकर अपने हृदय से यह प्रश्न पूछो कि क्या इसमें प्रसन्न होने का वास्तविक कारण है?"

ललिता अब भी चुप रही। हरानबाबू ने समझा कि उनकी बातों का बड़ा असर हो रहा है; उन्होंने दुगने उत्साह के साथ कहा, "दीक्षा! दीक्षा जीवन का कितना पवित्र मुहूर्त है, यह क्या आज मुझे बताना होगा? उस दीक्षा को कलुषित करना! सुख-सुविधा या आसक्ति के लालच में पड़कर क्या हम ब्रह्म-समाज को असत्य के पथ पर छोड़ देंगे- पाखंड को आदर पूर्वक अपने बीच बुला लेंगे? बोलो ललिता, ब्रह्म-समाज की इस दुर्गति का इतिहास क्या तुम्हारे जीवन के साथ हमेशा के लिए जुड़ जाएगा?"

ललिता ने अब भी कुछ नहीं कहा, कुर्सी के हत्थे कसकर पकड़े हुए चुपचाप बैठी रही। हरानबाबू बोले, "आसक्ति की शह से दुर्बलता मनुष्य पर कैसे दुर्निवार होकर हमला करती है यह मैंने कई बार देखा है। और मनुष्य की दुर्बलता को कैसे क्षमा करना होता है वह भी मैं जानता हूँ। लेकिन जो दुर्बलता केवल अपने जीवन को नहीं, सैकड़ों-हज़ारों लोगों के जीवन के सहारे की एकदम जड़ पर जाकर चोट करे, उसे क्या पल-भर के लिए भी क्षमा किया जा सकता है- ललिता, तुम्हीं बताओ। उसे क्षमा करने का अधिकार क्या ईश्वर ने हमें दिया है?"

कुर्सी छोड़कर ललिता उठ खड़ी हुई। बोली, "नहीं, नहीं, पानू बाबू, आप क्षमा न करें! सारी दुनिया के लोगों को आपके आक्रमण का ही अभ्यास हो गया है-शायद आपकी क्षमा हम सबके लिए बिल्कुल असह्य हो जाएगी।" यह कहकर ललिता कमरे से चली गई।

वरदासुंदरी हरानबाबू की बातों से उद्विग्न हो उठीं। वह किसी तरह भी विनय को छोड़ देना नहीं चाहती थी। हरानबाबू से उन्होंने बहुत अनुनय-विनय की, किंतु सब बेकार। अंत में उन्होने क्षुब्ध होकर उन्हें विदा किया। उनकी समस्या यह थी कि वह न तो परेशबाबू को अपने पक्ष में कर सकीं और न हरानबाबू को ही। उन्होंने ऐसी अवस्था की कभी कल्पना भी नहीं की थी। एक बार फिर हरानबाबू के बारे में वरदासुंदरी की राय बदलने का समय आ गया था।

दीक्षा लेने का मामला जब तक विनय के सामने धुंधला-सा ही दीखता था तब तक वह बड़े ज़ोर-शोर सो अपना संकल्प उगल कर रहा था। लेकिन जब उसने देखा कि उसके लिए उसे ब्रह्म-समाज में आवेदन करना होगा, और हरानबाबू से सलाह भी ली जाएगी, तब इस खुले प्रचार की विभीषिका से वह अत्यंत कुंठित हो उठा। वह कहाँ जाकर किसके साथ सलाह करे, यह नहीं सोच सका। आनंदमई के पास जाना भी उसे असंभव जान पड़ा। सड़क पर घूमने की शक्ति भी उसमें नहीं थी। वह अपने सूने घर में जाकर ऊपर के कमरे में तख्तपोश पर लेट गया।

शाम हो गई थी। नौकर अंधेरे मे बत्ती लेकर आया तो विनय उसे मना करने ही जा रहा था कि नीचे से उसने पुकार सुनी, "विनय बाबू, विनय बाबू!"

विनय की जान में जान आई। मानो मरुभूमि में प्यासे को पानी मिल गया। इस हालत में सतीश को छोड़कर दूसरा कोई उसे आराम न पहुँचा सकता। विनय की शिथिलता दूर हो गई। "कहो भाई सतीश", कहता हुआ वह लपककर बिस्तर से उठा और जूता पहने बिना ही तेज़ी से सीढ़ियाँ उतर गया।

विनय ने देखा, नीचे सीढ़ियों के सामने छोटे ऑंगन में सतीश के साथ वरदासुंदरी भी खड़ी है। फिर वही समस्या, वही चख-चख! घबराया हुआ-सा विनय सतीश और वरदासुंदरी को ऊपर के कमरे में ले गया।

वरदासुंदरी ने सतीश से कहा, "सतीश, तू जा, थोड़ी देर जाकर वहाँ बरामदे में बैठ।"

सतीश के इस नीरस निर्वासन से दु:खी होकर विनय ने उसे तसवीरों वाली कुछ पुस्तकें निकालकर दीं और साथ के कमरे में बत्ती जलाकर बिठा दिया।

वरदासंदुरी ने जब कहा, "विनय, ब्रह्म-समाज में तुम तो किसी को जानते नहीं, एक चिट्ठी लिखकर तुम मुझे ही दे दो, मैं कल सबेरे स्वयं जाकर उसे मंत्री महाशय को देकर सब प्रबंध करा दूँगी ताकि परसों रविवार को तुम्हारी दीक्षा हो जाय- तुम्हें और कोई चिंता नहीं करनी पड़ेगी।" तब विनय कुछ उत्तर ही न दे सका। उनके आदेश के अनुसार उसने एक चिट्ठी लिखकर वरदासुंदरी को दे दी। उसे इस बात की इच्छा थी कि जो भी हो, किसी एक ऐसे रास्ते पर चल पड़े जिस पर लौटने या दुविधा करने का कोई कारण ही न रहे।

चलते-चलते ललिता के साथ विवाह की बात का जिक्र भी वरदासुंदरी ने कर दिया।

वरदासुंदरी के चले जाने पर विनय के हृदय में एक भारी वितृष्णा जाग उठी। यहाँ तक कि ललिता की स्मृति से भी उसके मन में एक बेसुरा राग गूँज गया। उसे ऐसा लगा कि वरदासुंदरी की इस अशोभनीय हड़बड़ी में कहीं-कहीं मानो सभी के प्रति उसकी श्रध्दा कम होने लगी।

उधर वरदासुंदरी ने घर पहुँचते ही सोचा कि आज वह ललिता को खुश कर सकेगी। यह उन्होंने निश्चयपूर्वक समझ लिया था कि ललिता विनय को चाहती है, इसीलिए तो उनके विवाह की बात को लेकर समाज में इतनी चर्चा थी। इसके लिए स्वयं को

छोड़ वरदासुंदरी और सभी को दोषी मानती थी। उन्होंने पिछले कुछ दिनों से ललिता से बोलना भी लगभग बंद कर दिया था। इसीलिए आज जब बात कहीं किनारे लगती दीख पड़ी तब ललिता को यह जताकर कि ऐसा उन्हीं के कारण संभव हो सका, वह संधि करने को आतुर हो उठीं। ललिता के बाप ने तो मिट्टी ही कर दिया था। ललिता खुद भी विनय को सीधा न कर सकी और पानू बाबू से भी तो कोई मदद नहीं मिली। अकेली वरदासुंदरी ने ही सारी गुत्थी को सुलझा दिया। हाँ, हाँ! पाँच-पाँच पुरुष जो नहीं कर सकते, एक अकेली औरत कर दिखाती है।

लेकिन घर लौटकर वरदासुंदरी ने सुना, ललिता जल्दी ही सोने चली गई थी, उसकी तबीयत ठीक नहीं थी। मन-ही-मन वह हँसकर बोली, "मैं अभी तबीयत ठीक किए देती हूँ।"

हाथ में बत्ती लिए अंधेरे शयनकक्ष में जाकर उन्होंने देखा, ललिता अभी सोई नहीं थी, एक तकिए के सहारे अध-लेटी पड़ी थी।

ललिता फौरन उठ बैठी और बोली, "माँ, तुम कहाँ गई थीं?"

उसका स्वर तीखा था। उसे यह खबर मिल चुकी थी कि माँ सतीश को लेकर विनय के घर गई थी।

वरदासुंदरी ने कहा, "मैं विनय के यहाँ गई थी।"

"क्यों?"

क्यों!-मन-ही-मन वरदासुंदरी को गुस्सा आया। ललिता समझती है कि मेरा उससे कोई बैर है। अकृतज्ञ कहीं की!

वह बोलीं, "यह देखो, क्यों!" कहते हुए विनय की वह चिट्ठी उन्होंने ललिता की आँखों के सामने कर दी। चिट्ठी पढ़कर ललिता का मुँह लाल हो उठा। वरदासुंदरी ने अपनी बहादुरी जताने के लिए बढ़ा-चढ़ाकर कहा, "यह चिट्ठी क्या विनय से सहज ही लिखाई जा सकी!" वह दावे के साथ कह सकती हैं, यह काम और किसी से नहीं हो सकता था।

ललिता दोनों हाथों से मुँह ढककर लेट गई। वरदासुंदरी ने समझा, उनके सामने अपने हृदय का आवेग प्रकट करने में ललिता सकुचा रही है। वह कमरे से बाहर चली गईं।

दूसरे दिन सबरे चिट्ठी लेकर ब्रह्म-समाज के लिए तैयार होने पर उन्होंने देखा, वह चिट्ठी किसी ने फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दी है।

तीसरे पहर सुचरिता परेशबाबू के पास जाने के लिए तैयार हो रही थी कि बैरे ने आकर खबर दी, "एक बाबू आए हैं।"

"कौन बाबू? विनय बाबू हैं?"

बैरे ने कहा, "नहीं, बहुत गोरे लंबे-चौड़े, एक बाबू हैं।"

चौंककर सुचरिता ने कहा, "बाबू को ऊपर कमरे में लाकर बिठाओ।"

आज सुचरिता ने क्या कपड़े पहन रखे थे, कैसे पहन रखे थे, इसकी ओर अब तक ध्यान नहीं दिया था। अब शीशे के सामने खड़े होने पर उसे अपनी पोशाक बिल्कुल पसंद नहीं आई, लेकिन बदलने का समय भी कहाँ था। काँपते हाथों से ऑंचल और बाल इधर-उधर से ठीक करके धड़कते हुए हृदय से सुचरिता बैठने के कमरे में पहुँची। उसके मेज़ पर गोरा की रचनावली पड़ी हुई है, यह बात उसे याद नहीं रही थी। और ठीक उसी मेज़ के सामने कुर्सी पर गोरा बैठा हुआ था। किताबें बेशरमी से ठीक गोरा की ऑंखों के सामने बिछी थीं- उन्हें ढकने या हटाने का कोई उपाय नहीं था।

"मौसी आपको देखने के लिए बहुत दिनों से उत्सुक हैं, मैं उन्हें खबर दे आऊँ।" कहकर सुचरिता उल्टे पाँव लौट आई- अकेली गोरा से बातचीत करने का साहस उसमें न था।

कुछ देर बाद वह हरिमोहिनी को साथ लेकर आ गई। कुछ दिनों से विनय से हरिमोहिनी गोरा के मत, विश्वास और निष्ठा की और उसके जीवन की बातें सुनती आ रही थीं। उनके कहने पर बीच-बीच में सुचरिता दोपहर को उन्हें गोरा के लेख भी पढ़कर सुनाती भी रही थी। यद्यपि वे सब लेख ठीक-ठीक वह समझ नहीं पाती थीं और उनसे उन्हें नींद आने की भी सुविधा हो जाती थी, फिर भी मोटे तौर पर इतना वह समझ सकती थीं कि गोरा शास्त्र और लोकाचार का पक्ष लेकर आजकल की आचारहीनता के खिलाफ लड़ रहा है। आधुनिक अंग्रेजी पढ़े-लिखे लड़के के लिए इससे ज्यादा अचरज और तारीफ की बात और क्या हो सकती है। जब उन्होंने ब्रह्म परिवार के बीच पहले-पहल विनय को देखा था तब विनय से ही उन्हें यथेष्ट तृप्ति मिली थी। किंतु धीरे-धीरे उसका अभ्यास हो जाने के बाद जब उन्होंने अपने घर पर विनय को देखा तब उसके आचार की कमियाँ ही उन्हें ज्यादा अखरने लगीं। विनय

पर वह बहुत कुछ निर्भर करने लगी थीं इसीलिए उसके प्रति उनका धिक्कार भी प्रतिदिन और तीव्र होता जाता था, और इसीलिए गोरा की प्रतीक्षा वह बड़ी उत्सुकता से कर रही थी।

एक नज़र गोरा की ओर देखकर ही हरिमोहनी चकित हो गईं। हाँ, यह होता है ब्राह्मण! जैसे बिल्कुल होम की अग्नि हो। जैसे साक्षात् शुभ्रकाय महादेव! उनके मन में ऐसे भक्तिरस का संचार हुआ कि जब गोरा उन्हें प्रणाम करने के लिए झुका तब उसे ग्रहण करते वह झिझक गईं।

हरिमोहिनी ने कहा, "तुम्हारी बात बहुत सुनती रही हूँ, बेटा! तुम्हीं गौर हो। गौर ही तो हो! वह जो कीर्तन के बोल हैं-

'चाँदेरा अमिया सने चंदन बाँटिया गो

के माजिल गोरार देहखानि-'

वह आज आँखों से देख लिया। कैसे तुम्हें कोई जेल में डाल सका मैं तो यही सोच रही हूँ।"

हँसकर गोरा ने कहा, "आप जैसे लोग अगर मजिस्ट्रेट होते तो जेल में सिर्फ चूहे और चमगादड़ ही रहते।"

हरिमोहिनी ने कहा, "नहीं बेटा, दुनिया में चोर-जुआरियों की क्या कमी है। लेकिन मजिस्ट्रेट की क्या आँखें नहीं थीं? तुम कोई ऐसे-वैसे आदमी नहीं हो, तुम तो भगवान के आदमी हो, यह तो तुम्हारे चेहरे की ओर देखने से ही पता लग जाता है। जेल है इसीलिए क्या किसी को भी उसमें भर देना होगा? बाप रे- यह कैसा न्याय है!"

गोरा ने कहा, "आदमी के चेहरे की ओर देखने से उन्हें कहीं भगवान का रूप न दीख जाय, इसलिए मजिस्ट्रेट लोग सिर्फ कानून की किताब की ओर देखकर ही फैसला करते हैं। नहीं तो लोगों को कोड़े, जेल, काला पानी, फाँसी की सज़ा देकर क्या उन्हें नींद आती या कुछ खाते बनता!"

हरिमोहिनी ने कहा, "मुझे तो जब भी फुर्सत मिलती है, राधारानी से तुम्हारी किताबें पढ़वाकर सुनती हूँ। कब तुम्हारे अपने मुँह से अच्छी-अच्छी बातें सुन सकूँगी, इतने दिनों से यही साध लगाए बैठी थी। मैं मूरख अनपढ़ औरत हूँ, बड़ी दुखिया हूँ, सब

बात समझा भी नहीं सकती और सब बातों में चित्त भी नहीं लगा सकती। पर बेटा, तुमसे कुछ ज्ञान पा सकूँगी, इसका मुझे पूरा विश्वास है।"

विनय गोरा ने उनकी बात का खंडन नहीं किया, चुप रह गया।

हरिमोहिनी बोलीं, "बेटा, तुम्हें आज कुछ खाकर जाना होगा। तुम जैसे ब्राह्मण लड़के को मैंने बहुत दिनों से नहीं खिलाया। आज जो कुछ है उसी से मुँह मीठा कर लो लेकिन और एक दिन के लिए तुम्हें मेरा निमंत्रण पक्का रहा।"

इतना कहकर हरिमोहिनी खाने की कुछ व्यवस्था करने चली गईं तो सुचरिता को फिर घबराहट होने लगी।

एकाएक गोरा ने बात शुरू कर दी, "विनय आपके यहाँ आया था?"

सुचरिता ने कहा, "हाँ"

गोरा ने कहा, "उसके बाद मेरी विनय से भेंट तो नहीं हुई, लेकिन मैं जानता हूँ कि वह क्यों आया था।"

गोरा कुछ रुका। सुचरिता चुप रही।

गोरा ने कहा, "आप लोग जो ब्रह्म मतानुसार विनय का विवाह करने की कोशिश कर रही हैं यह क्या अच्छा कर रही हैं?"

इस ताने से सुचरिता के मन से लज्जा और संकोच की जड़ता एकाएक दूर हो गई। उसने गोरा के चेहरे की ओर ऑखें उठाते हुए कहा, "ब्रह्म विवाह को मैं अच्छा न समझूं, आप क्या मुझसे यही आशा करते हैं?"

गोरा ने कहा, "आपसे मैं किसी छोटी बात की आशा नहीं करूँगा, यह आप अवश्य जानती ही होंगी। जितनी आशा सम्प्रदाय के लोगों से की जा सकती है, आपसे मैं उससे कहीं ज्यादा की आशा करता हूँ। किसी एक गुट की संख्या बढ़ा देना ही जिन ठेकेदारों का काम होता है आप उस स्तर की नहीं हैं यह मैं यकीन से कह सकता हूँ। मेरी इच्छा यही है कि आप अपने-आपको सही-सही जानें, दूसरे चार-छः लोगों की बातों में आकर अपने को छोटा करके न देखें। आप केवल किसी एक गुट की सदस्या-भर नहीं हैं, यही बात आपको अपने मन में बहुत स्पष्ट करके समझ लेनी होगी।"

सुचरिता अपने मन की सारी शक्ति इकट्ठी करके सँभलकर बैठ गई। वह बोली, "आप भी क्या किसी गुट के ही व्यक्ति नहीं हैं?"

गोरा ने कहा, "मैं हिंदू हूँ। हिंदू तो कोई गुट नहीं हुआ, हिंदू तो एक जाति है। यह जाति इतनी विशाल है कि इसका जातित्व किसमें है यह किसी परिभाषा में बाँधा ही नहीं जा सकता। समुद्र, जैसे उसकी लहर नहीं है। वैसे ही हिंदू काई गुट नहीं है।"

सुचरिता ने कहा, "हिंदू अगर गुट नहीं है तो इतनी गुटबंदी क्यों होती है?"

गोरा ने कहा, "किसी आदमी को यदि मारने जाएँ तो वह अपना बचाव क्यों करता है? उसमें प्राण हैं इसीलिए तो। सब तरह के आघात सहकर तो पत्थर ही चुप पड़ा रह सकता है।"

सुचरिता ने कहा, "जिसे मैं धर्म कहकर जानती हूँ उसे अगर हिंदू आक्रमण करना समझें तो ऐसी हालत में आप मुझे क्या करने को कहेंगे।"

गोरा ने कहा, "तब मैं आपको कहूँगा कि जिसे आप धर्म समझ रही हैं वह अगर हिंदू जाति नाम की इतनी बड़ी विराट सत्ता को एक कष्ट देने वाला आक्रमण जान पड़ता है, तो आपको अच्छी तरह सोचकर देखना चाहिए कि कहीं आपमें कोई भ्रम, कोई अंधता तो नहीं है, कि आपने सब ओर से सब तरह का विचार कर लिया है कि नहीं। गुट के लोगों के संस्कारों को केवल होड़ या आलस्य के कारण सत्य मानकर इतना बड़ा उपद्रव करने को तैयार हो जाना उचित नहीं है। चूहा जब जहाज के तल में बिल खोदने लगता है तब वह अपनी सुविधा और प्रवृत्ति की ही सोचता है- वह यह नहीं देखता कि इतने बड़े आश्रय में छेद करने से उसे जितनी सुविधा होगी उसकी तुलना में और सबका कितना बड़ा नुकसान होगा। इसी तरह आपको भी यह सोचकर देख लेना होगा कि क्या आप केवल अपने गुट की बात सोच रही हैं या कि समूची मानवता की। समूची मानवता से क्या अभिप्राय है, यह आप समझती हैं? उसमें कितनी तरह की प्रकृतियाँ हैं-कैसी-कैसी प्रवृत्तियाँ, क्या-क्या ज़रूरतें? सभी मनुष्य एक ही मार्ग पर एक स्थान पर खड़े नहीं हैं- किसी के सामने पहाड़ हैं, किसी के सामने समुद्र, किसी के सामने जंगल, फिर भी किसी के लिए बैठे रहने का अवसर नहीं है, सभी को आगे बढ़ते ही जाना है। आप केवल अपने ही गुट के नियमों को सभी पर लागू करना चाहती हैं? ऑंखें बंद करके मान लेना चाहती हैं कि मनुष्यों के बीच कोई वैचित्रय नहीं है, कि सभी ने केवल ब्रह्म-समाज की बही में नाम लिखने के लिए संसार में जन्म लिया है? तब फिर जो दस्यु जातियाँ दुनिया की सभी जातियों

को युध्द में पराजित कर अपना एक छत्र राज फैलाने में ही दुनिया का कल्याण समझती हैं, जो अपनी ताकत के गरूर में यह नहीं मानतीं कि दूसरी जातियों की विशेषताएँ भी विश्व के हित के लिए मूल्यवान हैं, उनमें और आपमें अंतर ही क्या रह गया?"

सुचरिता थोड़ी देर के लिए सब बहस और तर्क भूल गई, गोरा के गंभीर स्वर की आश्चर्यजनक प्रबलता ने उसके सारे अंत:करण को झनझना दिया। गोरा किसी एक बात को लेकर बहस करता रहा है यह जैसे वह भूल ही गई, उसके सामने केवल इतना ही सत्य रह गया कि गोरा बोल रहा हैं

गोरा कहता गया, "भारत के बीस करोड़ लोगों को आपके समाज ने ही नहीं बनाया। इन बीस करोड़ लोगों के लिए कौन-सा मार्ग उपयोगी है- कौन-सा विश्वास, कौन-सा आचार उनकी भूख मिटाएगा, उन्हें शक्ति देगा, यह तय करने का भार ज़बरदस्ती अपने ऊपर लेकर इतने बड़े भारतवर्ष को आप क्यों एक-सा सपाट-समतल कर देना चाहती हैं? इस असंभव काम में जितनी अड़चन आती है, उतना ही आप लोगों को सारे देश पर गुस्सा आता है, अश्रध्दा होती है, जितना ही आप जिनका हित करना ाहते हैं उससे अधिक घृणा करके उन्हें पराया बना देते हैं। फिर भी आप यह मानना चाहते हैं कि जिस ईश्वर ने मनुष्य को विचित्र ही बनाया है और विचित्र ही रखना चाहा है, उसी की आप पूजा करते हैं। अगर सचमुच आप लोग उसी को मानते हैं, तो उसके विधान को आप लोग स्पष्ट क्यों नहीं देख पाते, अपनी बुध्दि और अपने गुट के अहंकार में क्यों उसका असल अभिप्राय नहीं ग्रहण करते?"

कुछ भी उत्तर देने की चेष्टा न करके सुचरिता चुपचाप गोरा की बात सुनती जा रही है, यह देखकर गोरा के मन में करुणा उपजी। थोड़ी देर रुककर उसने धीमे स्वर में कहा, "मेरी बातें शायद आपको कठोर जान पड़ेंगी- लेकिन मुझे एक विरोध पक्ष का आदमी समझकर मन में विद्रोह का भाव न रखें। मैं अगर आपको विरोध पक्ष का समझता तो कोई बात न कहता। आपके मन में जो एक स्वाभाविक उदार शक्ति है, वह गुट की सीमा में बँधी जा रही है इससे मुझे दु:ख होता है।"

सुचरिता के चेहरे पर लाली फैल गई। वह बोली, "नहीं-नहीं, आप मेरी बिल्कुल परवाह न करें। आप कहते जाइए, मैं समझने की कोशिश कर रही हूँ।"

गोरा ने कहा, "मुझे इसके सिवा और कुछ नहीं कहना है कि भारतवर्ष को आप अपनी सहज बुध्दि से, सहज मन से देखें, उसे प्रेम करें। भारतवर्ष के लोगों को आप यदि

केवल अब्रह्म मानकर देखेंगी तो उन्हें विकृत करके देखेंगी और उनकी अवज्ञा करेंगी, तब उन्हें बराबर गलत ही समझती रहेंगी। जहाँ से देखने पर उन्हें संपूर्ण देखा जा सकता है, वहाँ से उन्हें आप देखेंगी ही नहीं। ईश्वर ने उन्हें मनुष्य बनाया है, वह तरह-तरह से चलते हैं, उनके तरह-तरह के विश्वास और संस्कार हैं- लेकिन सबके मूल में एक ही मनुष्यता है, सबके भीतर ऐसा कुछ है जो हमारी अपनी चीज़ है, जिसको सही सच्ची दृष्टि से देखने पर उसकी सारी क्षुद्रता और अधूरेपन का आवरण चीरकर एक आश्चर्यमय महान सत्ता ऑखों के सामने आती है। बहुत दिनों की अनेक साधनाएँ उसमें छिपी हुई हैं, उसकी राख में अब भी बहुत दिनों के होम की अग्नि जल रही हैं और यही आग एक दिन आपके क्षुद्र देश-काल के ऊपर उठकर सारी दुनिया में अपनी शिखा प्रज्जवलित कर देगी इसमें थोड़ा भी संदेह नहीं है इसी भारतवर्ष के लोग बहुत दिनों से बहुत बड़ी बात कहते आए हैं, बहुत बड़े काम करते रहे हैं, वह सब एकाएक मिथ्या हो गया है ऐसी कल्पना करना भी सत्य के प्रति अश्रध्दा है- वही तो नास्तिकता है।"

सिर झुकाए सुचरिता सुन रही थी। अब चेहरा उठाकर बोली, "आप मुझे क्या करने को कहते हैं?"

गोरा ने कहा, "और कुछ नहीं कहता, मात्र इतना ही कहता हूँ कि आपको यह सोचकर देखना चाहिए कि हिंदू धर्म माँ की तरह अनेक मत-विश्वासी के लोगों को अपनी गोद में लेने का यत्न करता रहा है, अर्थात् दुनिया में केवल हिंदू धर्म ने मनुष्य को मनुष्य कहकर जाना है, केवल गुट का व्यक्ति नहीं समझा। हिंदू धर्म मूढ़ को भी मानता है, ज्ञानी को भी मानता है- और ज्ञान की भी केवल एक मूर्ति को नहीं मानता, उसके अनेक प्रकार के विकास को मानता है। ख्रिस्तान वैचित्रय को स्वीकार करना नहीं चाहते। वे कहते हैं, एक तरफ ख्रिस्तान धर्म है और दूसरी तरफ अनंत विनाश, और इनके बीच कोई विचित्रता नहीं है। हम लोगों ने ऐसे ही ख्रिस्तान से शिक्षा पाई है, इसलिए हिंदू धर्म की विचित्रता पर हम लज्जित होते हैं। इसी विचित्रता के अंदर से ही हिंदू धर्म एकता को देखने की साधना करता है, यह हम देख नहीं पाते। मन के चारों ओर पड़ा इसी ख्रिस्तानी शिक्षा का फंदा काटकर निकले बिना हम किसी हिंदू धर्म का सच्चा परिचय पाने के गौरव के अधिकारी नहीं होंगे।"

गोरा की बात सुचरिता केवल सुन ही नहीं रही थी, मानो प्रत्यक्ष देख रही थी। गोरा की ऑखों में भविष्य की जो ध्यान-मूर्ति बसी हुई थी, उसके शब्दों से वही मानो सुचरिता के सामने प्रकट हो रही थी। लज्जा को भूलकर, स्वयं अपने को भूलकर

विचारों के उत्साह से दीप्त गोरा के चेहरे को सुचरिता एकटक देखती रही। उस चेहरे में सुचरिता को कुछ ऐसी शक्ति दिखी जो योग-बल से दुनिया में बड़े-बड़े संकल्पों को पूरा कर देती है। सुचरिता ने अपने समाज के कई विद्वान और बुध्दिमान लोगों से बहुत-सी तत्व विवेचना सुनी है। सुचरिता आज मानो वज्रपाणि इंद्र को देख रही थी-उसके वाक्य जब प्रबल मंद स्वर से कानों पर आघात करके उसके अंतस् को स्पंदित कर रहे थे तब साथ-ही-साथ उसके रक्त में मानो बिजली की तीव्र लहर भी क्षण-क्षण पर नाच उठती थी। गोरा के मत से उसका मत कहाँ कितना मिलता है या नहीं मिलता, यह स्पष्ट तौर पर देखने की शक्ति सुचरिता में न रही। इसी समय सतीश ने कमरे में प्रवेश किया। गोरा से उसे भय लगता था, इसीलिए उससे बचता हुआ वह अपनी दीदी से सटकर जा खड़ा हुआ और धीरे से बोला, "पानू बाबू आए हैं।"

सुचरिता चौंक उठी- मानो किसी ने उसे पीट दिया हो। उसके मन की हालत ऐसी थी कि पानू बाबू के आने को वह किसी तरह ठेलकर,कुचलकर मिटाकर रद्द कर सके तो उसे शांति मिले। सतीश की धीमी बात गोरा ने न सुनी होगी, ऐसा सोचकर जल्दी से सुचरिता उठ खड़ी हुई। सीधी सीढ़ियों से उतरकर हरानबाबू के सामने जाकर वह बोली, "मुझे माफ कीजिए, आज आपसे बातचीत नहीं हो सकेगी।"

हरानबाबू ने पूछा, "क्यों नहीं हो सकेगी?"

प्रश्न का उत्तर न देकर सुचरिता ने कहा, "कल सबेरे आप उधर बाबा के यहाँ आ जाएँ तो मैं वहीं मिल जाऊँगी।"

हरानबाबू ने पूछा, "शायद आज तुम्हारे यहाँ कोई आया हुआ है?"

इस प्रश्न को भी टालकर सुचरिता ने कहा, "आज मुझे सुविधा नहीं है, आज दया करके आप मुझे क्षमा कर दें।"

हरानबाबू बोले, "लेकिन रास्ते से ही तो गौरमोहन बाबू की आवाज़ सुनाई पड़ी थी, वहीं हैं क्या?"

सुचरिता इस प्रश्न को टाल न सकी, लाल होती हुई बोली, "हाँ, हैं!"

हरानबाबू ने कहा, "अच्छा ही हुआ, उनसे भी मुझे कुछ बात करनी थी। तुम कुछ खास काम कर रही हो तो मैं तब तक गौरमोहन बाबू से बातचीत कर लूँगा।" यह कहकर सुचरिता की सम्मति की प्रतीक्षा किए बिना वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। कमरे में

पहुँचकर सुचरिता ने पास खड़े हरानबाबू को देखे बिना सीधे गोरा से कहा, "मौसी आपके लिए कुछ जलपान तैयार करने गई हैं, मैं ज़रा उन्हें देख आऊँ।" और तेज़ी से चली गई। हरानबाबू गंभीर चेहरा बनाकर एक कुर्सी पर बैठ गए।

हरानबाबू ने कहा, "कुछ दुबले दीख रहे हैं.... "

गोरा ने कहा, "जी हाँ, कुछ दिन दुबले होने के लिए ही उपचार चल रहा था।"

हरानबाबू ने स्वर कुछ नम्र करके कहा, "तभी तो। आपको बहुत कष्ट भोगना पड़ा।"

गोरा ने कहा, "जितनी आशा की थी, उससे अधिक तो नहीं।"

हरानबाबू बोले, "आप से विनय बाबू के बारे में कुछ बातचीत करनी है। आपने शायद सुना होगा, अगले रविवार को वह ब्रह्म-समाज में दीक्षा लेने का आयोजन कर रहे हैं।"

गोरा ने कहा, "नहीं, मैंने तो नहीं सुना।"

हरानबाबू ने पूछा, "आपकी इसमें सम्मति है?"

गोरा ने कहा, "विनय ने तो मेरी सम्मति नहीं माँगी।"

हरानबाबू ने कहा, "आप क्या समझते हैं, विनय बाबू सच्चे मन से यह दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए हैं?"

गोरा ने कहा, "जब वह दीक्षा लेने को राज़ी हुए हैं, तब आपका यह प्रश्न बिल्कुल निरर्थक है।"

हरानबाबू बोले, "प्रवृत्ति जब सबल हो उठती है तब हम यह सोचकर देखने का अवकाश ही नहीं पाते कि हम क्या विश्वास करते हैं और क्या नहीं करते। आप मानव-चरित्र तो जानते ही हैं।"

गोरा ने कहा, "नहीं, मैं मानव-चरित्र के बारे में अनावश्यक चर्चा नहीं करता।"

हरानबाबू ने कहा, "मेरा मत और समाज आपसे भिन्न है, लेकिन मैं आपका सम्मान करता हूँ। मैं निश्चय जानता हूँ कि आप में जो विश्वास है,वह सही हो या मिथ्या, कोई प्रलोभन आपको उससे िगा नहीं सकता। "लेकिन.... "

बात काटकर गोरा ने कहा, "मेरे लिए आपने यह जो ज़रा-सा सम्मान बचा रखा है, उसका ऐसा क्या मूल्य है कि उससे वंचित होकर विनय का कोई भारी नुकसान हो जाएगा! दुनिया में अच्छाई-बुराई नाम की चीज़ अवश्य है, लेकिन उसका मूल्य अगर आप अपनी श्रध्दा और अश्रध्दा के आधार पर लगाना चाहें तो लगा लें, किंतु फिर सबको वही मानने को न कहें।"

हरानबाबू ने कहा, "अच्छा, खैर, इस बात का निर्णय अभी न भी हो तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ, विनय जो परेशबाबू के यहाँ विवाह करने का प्रयत्न कर रहे हैं, आप क्या उसमें बाधा नहीं देंगे?"

लाल होते हुए गोरा ने कहा, "हरानबाबू, विनय के बारे में ये सब बातें क्या मैं आपके साथ कर सकता हूँ? आप जो हमेशा मानव-चरित्र की बात लिए रहते हैं, तो आपको यह भी समझना चाहए कि विनय मेरा बंधु है और आपका बंधु वह नहीं है।"

हरानबाबू बोले, "इस मामले से ब्रह्म-समाज का भी संबंध है इसीलिए मैंने यह बात उठाई है, नहीं तो.... "

गोरा ने कहा, "लेकिन मैं तो ब्रह्म-समाज का कोई नहीं हूँ, मेरे लिए आपकी इस दुश्चिंतता का क्या मूल्य है?"

इसी समय सुचरिता कमरे में आई। हरानबाबू ने उससे कहा, "सुचरिता, तुमसे मुझे कुछ खास बात कहनी है।"

यह कहने की कोई ज़रूरत हो ऐसा नहीं था; हरानबाबू ने खामखाह गोरा को यह जताने के लिए यह बात कही कि सुचरिता से उनकी विशेष घनिष्ठता है। सुचरिता ने उन्हें कोई जवाब नहीं दिया, गोरा भी अपनी जगह अटल बैठा रहा। हरानबाबू को एकांत बातचीत का मौका देने के लिए उठ खड़े होने का कोई उपक्रम उसने नहीं दिखाया।

हरानबाबू ने फिर कहा, "सुचरिता, ज़रा उस कमरे में चलना तो, तुमसे एक बात कहनी है।"

सुचरिता ने उन्हें कोई उत्तर दिए बिना गोरा की ओर देखकर पूछा, "आपकी माँ अच्छी तरह हैं?"

गोरा ने कहा, "ऐसा तो कभी हुआ ही नहीं कि वह अच्छी तरह न हों।"

सुचरिता ने कहा, "अच्छी तरह रहने की शक्ति उनके लिए कितनी सहज वस्तु हैं, यह मैं देख आई हूँ।"

गोरा को ध्यान आया कि जब वह जेल में था, तब सुचरिता आनंदमई को देखने गई थी। इस बीच हरानबाबू ने एकाएक मेज पर से एक किताब उठाकर उसे खोलकर पहले लेखक का नाम देखा, फिर किताब को इधर-उधर उलट-पलटकर देखने लगे।

सुचरिता का चेहरा लाल हो उठा। कौन-सी पुस्तक है, यह गोरा जानता था, इसलिए वह मन-ही-मन हँसा।

हरानबाबू ने पूछा, "गौरमोहन बाबू, यह सब शायद आपके बचपन की रचनाएँ हैं।"

हँसकर गोरा बोला, "वह बचपन अब भी चालू है। किसी-किसी प्राणी का बचपन जल्छी समाप्त हो जाता है, किंतु किसी-किसी का बहुत दिन तक बना रहता है।"

कुर्सी से उठते हुए सुचरिता ने कहा, "गौरमोहन बाबू, आपके लिए जलपान तैयार हो गया होगा। आप ज़रा उस कमरे में चलिए- मौसी पानू के सामने तो आएँगी नहीं, वह आपकी प्रतीक्षा कर रही होंगी।"

सुचरिता ने यह अंतिम बात विशेष रूप से हरानबाबू को चोट पहुँचाने के लिए ही कही। आज वह बहुत सह चुकी थी, कुछ जवाब दिए बिना न रह सकी।

गोरा उठ खड़ा हुआ। हरानबाबू परास्त हुए बिना बोले, "तो मैं यहीं प्रतीक्षा करता रहूँ।"

सुचरता ने कहा, "फिजूल प्रतीक्षा करके क्या होगा, आज समय मिलना मुश्किल ही है।"

लेकिन हरानबाबू नहीं हिले। सुचरिता और गोरा कमरे से चले गए।

इस घर में गोरा को देखकर और उसके प्रति सुचरिता का व्यवहार लक्ष्य करके हरानबाबू का मन अस्त्र सँभालता हुआ सतर्क हो उठा। ब्रह्म-समाज से सुचरिता क्या ऐसे विमुख हो जाएगी? उसको मर्यादित करने वाला क्या कोई नहीं है? जैसे भी हो उसका प्रतिरोध करना ही होगा। हरानबाबू एक कागज लेकर सुचरिता को चिट्ठी लिखने बैठ गए। हरानबाबू के कुछ-एक निश्चित विश्वास थे, जिनमें से एक यह भी था कि सत्य का नाम लेकर जब वह किसी को फटकारते हैं तो उनके तेजस्वी वाक्य

कभी निष्फल नहीं जा सकते। केवल वाक्य ही सब कुछ नहीं हैं, मनुष्य का मन नाम की भी एक चीज़ है, इसकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता था।

जालपान के बाद हरिमोहिनी के साथ काफी देर तक बातचीत करके गोरा जब अपनी छड़ी लेने के लिए सुचरिता के कमरे में आया तब शाम हो गई थी। सुचरिता की डेस्क पर बत्ती जल रही थी। हरानबाबू चले गए थे। सुचरिता के नाम एक चिट्ठी मेज़ पर इस तरह रखी थी कि कमरे में प्रवेश करते ही उस पर नज़र जा पड़े।

गोरा का हृदय उस चिट्ठी को देखकर भीतर-ही-भीतर कठोर हो आया। चिट्ठी हरानबाबू की लिखी हुई है, इसमें उसे संदेह न था। सुचरिता पर हरानबाबू का कुछ खास अधिकार है यह गोरा जानता था, उस अधिकार में कोई रुकावट आ गई है यह वह नहीं जानता थ। आज जब सतीश ने हरानबाबू के आने की बात सुचरिता के मान में कही और सुचरिता चकित होकर जल्दी से नीचे चली गई और फौरन उन्हें साथ लेकर लौट आई तब उसे कुछ बेतुका-सा लगा। फिर जब हरानबाबू को कमरे में अकेला छोड़कर सुचरिता गोरा को खिलाने ले गई, तब उसका यह व्यवहार गोरा को कुछ खटका अवश्य था, लेकिन जहाँ घनिष्ठता हो वहाँ ऐसा रूखा व्यवहार भी चल सकता है, यही सोचकर गोरा ने इसे आत्मीयता का ही चिन्ह मान लिया था। इसके सिवा मेज़ पर यह चिट्ठी देखकर गोरा को और धक्का लगा। चिट्ठी एक बड़ी ही रहस्यमय चीज़ है। बाहर केवल नाम दिखाकर वह असल बात भीतर रख लेती है इससे वह किसी को बिल्कुल बिना कारण व्याकुल कर दे सकती है।

गोरा ने सुचरिता के चेहरे की ओर देखकर कहा, "मैं कल आऊँगा।"

सुचरिता ने ऑखें मिलाए बिना कहा, "अच्छा।"

विदा लेते समय गोरा ने सहसा ठिठकर कहा, "भारतवर्ष के सौरमंडल में ही तुम्हारा निश्चित स्थान है- तुम मेरे अपने देश की हो- कोई धूमकेतु आकर तुम्हें अपनी पूँछ की लपेट में लेकर शून्य में चला जाए, यह किसी तरह संभव नहीं हो सकेगा। जहाँ तुम्हारा आसन हैं वहीं तुम्हें दृढ़ता से प्रतिष्ठित करके ही मैं छोड़ूँगा। ये लोग तुम्हें समझाते रहे हैं कि तुम्हारा सत्य और धर्म उस जगह तुम्हारा परित्याग कर देगा मैं तुम्हें साफ बता दूँगा कि तुम्हारा सत्य और धर्म केवल तुम्हारा या और दो-चार लोगों का मत या वाक्य नहीं है, वह चारों ओर से असंख्य प्राणों के सूत्र से बँधा है, चाहने से ही उसे वन से वे उखाड़कर गमले में नहीं रोप दिया जा सकता। उसे अगर उज्ज्वल और प्राण रखना चाहती हो, उसे संपूर्ण रूप से सार्थक करना चाहती हो तो तुम्हें

लोक-समाज के हृदय में उस जगह आसन लेना ही होगा जो तुम्हारे लिए तुम्हारे जन्म के भी बहुत पहले से निर्दिष्ट है। किसी तरह तुम यह नहीं कह सकोगी कि- ये पराए हैं, मैं इनकी कोई नहीं हूँ- ऐसा कहोगी तो तुम्हारा सत्य, धर्म, शक्ति सब एकाएक छाया-सी धुंधली हो जाएँगी। भगवान ने तुम्हें जिस जगह भेज दिया है वह चाहे जैसी हो, किंतु तुम्हारा मत अगर तुम्हें वहाँ से खींचकर हटा ले जाएगा तो उससे कभी तुम्हारे मत की जीत नहीं होगी, यह बात मैं तुम्हें ठीक तरह समझा दूँगा। कल मैं फिर आऊँगा।"

इतना कहकर गोरा वहाँ से चला गया। कमरे के भीतर की हवा मानो बहुत देर तक काँपती रही। सुचरिता मूर्ति-सी स्तब्ध बैठी रही।

गोरा - Gora in Hindi

1. गोरा अध्याय
2. गोरा अध्याय
3. गोरा अध्याय
4. गोरा अध्याय
5. गोरा अध्याय
6. गोरा अध्याय
7. गोरा अध्याय
8. गोरा अध्याय
9. गोरा अध्याय
10. गोरा अध्याय
11. गोरा अध्याय
12. गोरा अध्याय
13. गोरा अध्याय
14. गोरा अध्याय
15. गोरा अध्याय
16. गोरा अध्याय
17. गोरा अध्याय
18. गोरा अध्याय
19. गोरा अध्याय
20. गोरा अध्याय